thearyasamaj.org

[redacted]

RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल. 2012-14

ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

मूल्य : 2 रु.
वर्ष: 71 अंक : 25
सृष्टि संवत् 1960853115
28 सितम्बर 2014
दयानन्दाब्द 189
वार्षिक : 100 रू.
आजीवन : 1000 रू.
दूरभाष : 2292926, 5062726

जालन्धर

वर्ष-71, अंक : 25, 25/28 सितम्बर 2014 तदनुसार 13 आश्विन सम्वत् 2071 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

अंधकार छोड़कर प्रकाश की कामना करो

-ले० स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन्नारे स्याम दुरितादभीके।
इमा गिरः सोमपाः सोमवृद्ध जुषस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः।।
-ऋ. 3/39/7

शब्दार्थः विजानन्=विज्ञानी मनुष्य **तमसः**= अंधकार से हट कर **ज्योति**= प्रकाश को **वृणीत**= वरण करें, पसन्द करें। हम **दुरितात्**= दुर्गति से **अभी के+आरे**= अत्यन्त दूर **स्याम**= होवें। हे **सोमपाः**= सोमरक्षक **सोमवृद्धः**= सोम के कारण वृद्ध **इन्द्र**= इन्द्र ! योगात्मन् ! **पुरूतमस्य**= सर्वश्रेष्ठ **कारोः**= स्तोता= पदार्थ-ज्ञानकारक को **इमाः**= इन **गिरः**= वचनों को, वेदवचनों को **जुषस्व**= प्रीतिपूर्वक सेवन कर।

व्याख्या= अंधकार मृत्यु है, प्रकाश जीवन है, अतः वेद ने आदेश किया- **ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन्**= विज्ञानी मनुष्य अंधकार से (अन्धकार छोड़ कर) प्रकाश को चुनें।

अंधकार और प्रकाश का भेद जिसे ज्ञात होगा, वही अन्धकार त्याग कर प्रकाश को पकड़ेगा। इसीलिये **विजानन्** शब्द का प्रयोग किया है।

वेद में प्रकाश की कामना अनेक स्थानों पर की गई है। संध्या के उपस्थान मंत्र में आता है-उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्= हम अंधकार को छोड़ कर श्रेष्ठ प्रकाश को देखें। प्रकृत मंत्र से अगले मंत्र में ही कहा गया है-

ज्योतिर्यज्ञाय रोदसी अनुष्यात्- ऋ. 3/39/8= दोनों लोकों में यज्ञ के लिये प्रकाश व्याप्त हो। प्रकाश का प्रयोजन है यज्ञ। एक दूसरे का हितसाधन यज्ञ है, उससे परमकल्याण मिलता है।

प्रकाश के ज्ञान का फल दूसरे चरण में बतलाया है- **आरे स्याम दुरितादभीके**= दुरित से, दुर्गति से हम बहुत दूर हों, अर्थात ज्ञान प्रकाश का फल यह होना चाहिये कि हमें भले बुरे का विवेक हो। बुरे कर्म का फल दुरित= दुर+इत= दुर्गति होती है, यह ज्ञान होना चाहिये। सारा का सारा वेद मनुष्य को दुरित से हटने की प्रेरणा देता है, अतः भगवान ने आदेश किया- **इमा गिरः कारोः**= सर्वोत्कृष्ट ज्ञानदाता के इन वचनों का प्रीतिपूर्वक सेवन कर अर्थात वेदानुसार आचरण कर।

इन्द्र=जीव को इस मंत्र में **सोमपाः** कहा है। सोमपाः का अर्थ है, सोमपान करने वाला, तथा सोम की रक्षा करने वाला, अर्थात् भोग्य पदार्थों की रक्षा भी जीव का कर्त्तव्य है। जीव सोमवृद्ध है, सोम से बढ़ता है। सोम का अर्थ सोमलता ही नहीं है। सोम ब्रह्मानंद-रस को भी कहते हैं, जैसा कि वेद में कहा है-

सोमं मन्यते पपिवान्यत्सपिंषन्त्योषधिम्।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन।।
-ऋ. 10/85/3

जब औषधि (सोमलता) को पीसते हैं, तब सोमपान किया जाना समझा जाता है, किन्तु जिस सोम को ब्रह्मवेता लोग जानते और प्राप्त करते हैं, उसको कोई नहीं खाता-पीता। सचमुच ब्राह्मणों के सोम का अब्राह्मण उपभोग कर ही नहीं सकते। ब्रह्मवेता का सोम ब्रह्मानंद ही है। इसका पान करना ही इसकी रक्षा करना है, क्योंकि यह पान करने से, दान करने से बढ़ता है, घटना नहीं जैसा कि ऋग्वेद 10/85/5 ने स्वयं कहा है-

यत्त्वा देव प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः। -ऋ. 10/85/5

हे दिव्य गुणयुक्त ! जब तेरा पान किया जाता है, तब तू फिर बढ़ जाता है। ब्रह्मानंद रसपान से ज्ञान प्रकाश बढ़ता है-

सना ज्योतिः सना स्व र्विश्वा च सोम सौभगा।
अथा नो वस्यसस्कृधि।। -ऋ. 9/4/2

हे सोम! हम तुझसे सदा ज्योतिः, सदा आनन्द और समस्त सौभाग्य मांगते हैं। इन्हें देकर तू हमें पूजनीय-प्रशंसनीय कर दे।

-स्वाध्याय संदोह से साभार

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा। **-व्यवस्थापक आर्य मर्यादा**

thearyasamaj.org

स्वाध्याय के लाभ

-ले० स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती

(गतांक से आगे)

यदि निद्रा हो तो एकाराम हो, जागरण हो तो एकाराम हो, किसी विषय का सुख-सेवन हो तो एकारामता से हो। आहार-विहार सभी में एकारामता आवश्यक है। सबमें एकारामता तभी आ सकती है, जब पहले व्यक्ति ने घोर श्रम किया होता है। जब व्यक्ति श्रम से अपने को थका लेता है, तब जो अखण्ड नींद आती है, उससे जो आराम अनुभव करता है, उसे कहते हैं एकारामता। जब सामान्य श्रम तक का यह लाभ है तो परम श्रम (स्वाध्याय) का लाभ एकारामता होनी चाहिए।

एकारामता का एक अभिप्राय यह भी है कि व्यक्ति किसी अद्वितीय तत्त्व में ही रमण करे, और वह अद्वितीय तत्त्व सिवाय परमात्मा के और क्या हो सकता है ? जिसके लिए वेद ने स्वयं कहा है-**''न द्वितीयो (अद्वितीयो) न तृतीयश्चतुर्थोनाप्युच्यते.. न पंचमो न षष्ठो सप्तमो नाप्युच्यते...। नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यतेः स एष एकवृद् एक एव।''** (अथर्व० १३।४। २६-२८) उसके समान दूसरा नहीं, तीसरा नहीं, चौथा नहीं, पांचवां नहीं, छठा नहीं, सातवां नहीं, आठवां नहीं, नवां नहीं, दसवां भी नहीं, वह तो एक है, निश्चय से अद्वितीय है-एक ऐसा रस है जो एकवृत् है। अभिप्राय यह कि ऐसे एक में, अद्वितीय तत्त्व में (परमात्मा में) ही रमना वास्तविक एकारामता है। जागतिक सुखों में तो एक से उपराम हुआ और दूसरे की कामना हुई। अभी जिसमें रमता था, जिसे रमणीय समझता था, उससे उपराम हुआ, और अन्य की तलाश आरम्भ कर दी। उसमें एकारामता कहां ? एकारामता हो भी कैसे ? 'एक' में रमने से ही तो एकारामता होगी।

एकारामता में एक अन्य भाव निहित है। आराम शब्द जहां उस स्थिति का सूचक है, जहां सब ओर से हटकर एक में रम जाना है, पूर्णतया रम जाना है; वहां रम शब्द का एक अर्थ खिलाड़ी है। जिस धातु से यह शब्द बना है उसका अर्थ है क्रीड़ा **'रमु क्रीडायाम्'**। किसी वस्तु में रमने का अर्थ भी यही है कि उससे खुलकर खेलना। सच्चा खिलाड़ी ही इस सच्चे आराम का लाभ करता है। जैसे सच्चे खिलाड़ी के हाथ में आई गेंद उसके हाथ में नाचती है, उसकी स्टिक पर नाचती है, उसके इशारे पर नाचती है, तद्वत् स्वाध्यायशील व्यक्ति जिस वस्तु में आराम अनुभव करता है, वह वस्तु उसके हाथ का खिलौना बन जाती है। स्वाध्यायशील एवं खिलाड़ी के हाथ में रमणीय खेल बन जाता है, वह उसके इशारे पर चलता है। अभिप्राय यह कि वह उसे अपने हाथों से खिलाता है, उसके हाथों में नहीं खेलता। सांसारिक सुखों में रमता है, उनसे खेलता है, उनके हाथ की कठपुतली नहीं बनता।

बस, सामान्य व्यक्ति और स्वाध्यायशील व्यक्ति में यही अन्तर है। स्वाध्यायशील व्यक्ति यह सब जानकर भी अन्ततः उस परम अद्वितीय एक तत्त्व परमात्मा से खेलता है। यदि खिलौना बनता भी है, तो एक उसी के हाथ का खिलौना बनता है। ऐसे खिलाड़ी से खेल ठानता है जो अद्वितीय है, जो केवल एक ही है, जिसके तुल्य कोई नहीं। सामान्य व्यक्ति से खेलना उसे अच्छा नहीं लगता। इस खेल में जो आनन्द है वह सांसारिक खेलों में कहां ? कभी उसे अपने हाथों में खिलाता है तो कभी उसके हाथों में खेलता है। दोनों सखा जो ठहरे! इस सखा के साथ खेलने में जो आनन्द आता है, एक वही अद्वितीय आनन्द होता है, जिसकी तुलना में अन्य सभी सांसारिक सुख फीके पड़ जाते हैं।

८. **प्रज्ञावृद्धिर्भवति**-यदि मनुष्य स्वाध्याय-श्रम में जुटा रहे तो उसे जहां पहले सात लाभ होते हैं, वहां आठवां लाभ और संभवतः एक सर्वोपयोगी लाभ होता है प्रज्ञा-वृद्धि। उसे त्रैकालिकी बुद्धि प्राप्त हो जाती है। त्रैकालिकी बुद्धि का ही नाम प्रज्ञा है। इसके सिद्ध हो जाने से सभी सिद्धियां आ विराजती हैं। इसके चले जाने से सभी सिद्धियां स्वतः विदा हो जाती है, अपना आसन उठा लेती है। आचार्य चरक ने कितना यथार्थ कहा है, प्रज्ञापराधो हि मूलं सर्वरोगाणाम्-प्रज्ञा की भूल ही समस्त रोगों की मूल है। प्रज्ञा गई कि समस्त रोगों ने डेरा जमा लिया। इसलिए व्यक्ति प्रज्ञा को किसी भी कीमत पर न जाने दे। जिसके पास त्रैकालिकी बुद्धि है उसे और क्या चाहिए ? जो अपने भूत, भविष्य और वर्तमान का तत्काल द्रष्टा है, जो अपने भूत पर दृष्टि रखता है, उसे अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने देता, और जो अपने भविष्य पर दृष्टि रखता है-भूत-भविष्य के दोनों परस्पर-विरोधी विपरीतगामी सिरों को मिलाकर वर्तमान में केन्द्रित कर लेता है, वह व्यक्ति कदापि हानि नहीं उठाता। वह प्राचीनता और नवीनता को मिलाकर चलता है, वह बीते हुए कल और आने वाले कल को आज के दिन के साथ मिलाकर, संगत करके चलता है। वह 'ह्यः' और 'श्वः' को नित्य 'अद्य' में मिला लेता है। यही उसकी सफलता का रहस्य है। इसलिए कहा कि स्वाध्यायशील व्यक्ति को प्रज्ञा = त्रैकालिकी बुद्धि प्राप्त होती है। प्रज्ञा को संस्कृत में पण्डा भी कहते हैं। प्रज्ञा शब्द ही प्राकृत से पञ्ञा हो गया है। प्रज्ञा, पण्डा, बुद्धि, धी, मति और पञ्ञा आदि समानार्थक शब्द हैं। वह व्यक्ति पण्डित है, बुद्धिमान, धीमान् और मतिमान् है जो प्रज्ञावान् है। इसका अभिप्राय हुआ कि स्वाध्यायशील पण्डित बन जाता है। स्वाध्याय से प्रज्ञा की उत्पत्ति होती है।

इस तथ्य को पुनः महामति चाणक्य ने अपनी मोहर लगाकर प्रमाणित कर दिया है, वे कहते हैं ''श्रुताद्धि प्रज्ञोपजायते, प्रज्ञया योगो, योगादात्मवत्ता इति विद्यासामर्थ्यम्।'' कौ० अर्थशास्त्र (विनया० ५ वृद्धसंयोग:)- ''श्रुतात् श्रवणात् प्रज्ञा उपजायते त्रैकालिकी बुद्धिर् उपजायते।'' स्वाध्याय से प्रज्ञा, त्रैकालिकी बुद्धि उत्पन्न होती है और प्रज्ञा से योग प्रज्ञया योग; शास्त्रोक्तानुष्ठाने श्रद्धा, प्रज्ञा से शास्त्रविहित अनुष्ठानों में श्रद्धा होती है। कर्म में कुशलता प्राप्त होती है। योगः कर्मसु कौशलम् और योगात् आत्मवत्ता, मनस्विता, सत्त्ववत्ता, उपाजायते। योग से व्यक्ति को आत्मज्ञान होता है, मनन का सामर्थ्य और सत्त्वलाभ होता है, यह विद्यासामर्थ्य है। ज्यों ही स्वाध्यायी को प्रज्ञा-लाभ हुआ कि उसके साथ लगे हुए सभी लाभ उसे स्वयं मिल गये। प्रथम योगसिद्धि, द्वितीय आत्मलाभ, तृतीय सत्त्वलाभ। भगवान् याज्ञवल्क्य ने प्रज्ञा से होने वाले लाभों का वर्णन इस प्रकार किया है-''वर्धमाना प्रज्ञा चतुरो धर्मान् (ब्राह्मणम्) अभिनिष्पादयति'' बढ़ी हुई प्रज्ञा, ब्राह्मण के लिए चार धर्मों को प्राप्त करा देती है। चार धर्म ये हैं-

1. ब्राह्मण्यम्, 2. प्रतिरूपचर्याम्, 3. यशः, 4. लोकपक्तिम्।

ग-९. ब्राह्मण्यम्

आठवें लाभ के अन्तर्गत प्रथम लाभ ब्रह्मण्यता प्राप्त हो जाती है। व्यक्ति को ब्राह्मण-भाव प्राप्त होता है। स्वाध्याय का कोई अन्य लाभ हो न हो, उसे ब्रह्मण्यता की सिद्धि हो जाना ही अपने-आप में एक अति उत्कृष्ट लाभ है। वह शूद्रत्व से निकलकर ब्राह्मणत्व की कोटि में आ जाता है। उसे अग्रता प्राप्त होती है, वह मुखवत् सर्वत्र मुखिया माना जाता है। हर व्यक्ति उसे मुखवत् समझता है और यही आशा करता है कि यह मेरी कहेगा, मेरी वाणी बनेगा और मेरी आवाज़ बनेगा।

जब समाज का प्रत्येक व्यक्ति ब्राह्मण को अपना मुख समझेगा तो अपने हाथ में आई भोज्य, पेय, चूष्य, लेह्य, आहुतियां भी उसी में डालेगा। स्वाध्यायशील व्यक्ति में ब्राह्मण्यता आ जाने का यही अर्थ है, कि वह सभी का अग्रसर, सभी का पूज्य, वन्दनीय और नमस्करणीय हो जाता है। उसमें जो नीति गुण हैं उनका तो कहना ही क्या, उनके अतिरिक्त ब्रह्मण्यता का होना-सर्वभूत-हित कामना, सर्वदुःखानुभूति, संवेदनशीलता, परोपकारिता, स्वार्थत्याग, परमतपस्विता आदि गुण उसमें अनायास आ विराजते हैं।

(क्रमशः)

thearyasamaj.org

सम्पादकीय......

मानव जीवन का मूल्य-जननी

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी

अर्थात् जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान् है क्योंकि माता बालक को अच्छे संस्कार देकर उसके जीवन का कल्याण करती है, उसे संस्कारी बनाती है और जन्मभूमि संस्कृति व सभ्यता देती है। अच्छे संस्कारों पर आधारित संस्कृति और सभ्यता देश का गौरव बनते हैं। माता बालक को धर्मपूर्वक और विचारपूर्वक अच्छे संस्कार दे सकती है। आज मनुष्य ने नित नए आविष्कारों से दुनिया के देशों को वैभवशाली बना दिया। विज्ञान ने असम्भव को सम्भव बना दिया और आज मनुष्य उसके प्रभाव में दौड़ चला जा रहा है। इस दौड़ का विश्लेषण करने पर पाते हैं कि मनुष्य ने भौतिक उन्नति को ही जीवन का मूल्य बना दिया है। मनुष्य जीवन का संस्कारी हिस्सा जैसे अन्तर्धान हो गया है। शरीर और मन का तादात्म्य नहीं रहा। जीव और शरीर को चलाने वाला ईश्वर या शक्ति कहां है, क्यों है इसे सोचना हमने छोड़ दिया है। वेदों पर आधारित सम्पूर्ण मानवी जीवन की रचना इतनी सुयोजित और स्वाभाविक है कि उसे अपनाने पर हम श्रेष्ठ समाज का निर्माण कर सकते हैं।

हमारे शास्त्रों में कहा है कि एक अच्छी माता सौ शिक्षकों के बराबर है। इसलिए यह माताओं का कर्त्तव्य है कि वे अपने बालकों को ऐसे संस्कार ऐसी शिक्षा दें कि जिससे वे राष्ट्र का गौरव कहला सकें। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त जिन अवस्थाओं में से मनुष्य को गुजरना है उसका ज्ञान कर्मकाण्ड द्वारा कराया जाता है। उसका प्रभाव मन पर पड़ता है और अनुभव के साथ-साथ बालक उसे तुलनात्मक दृष्टि से देखने लगता है। समय आने पर उसका सदुपयोग करता है। इसलिए बच्चों को अच्छे संस्कार मिलने चाहिए। ये उसके जीवन के सोपान हैं। उस पर समझकर कैसे चढ़ना चाहिए यह हमें सीखना है।

एक बार एक अन्धा हाथ में लालटेन लिए रास्ते पर जा रहा था। सामने से आते हुए भाई ने यह देखा तो उसे विस्मय हुआ। उसने अन्धे को रोककर पूछा कि आप लालटेन लेकर क्यों चल रहे हो? आपको तो दिखाई नहीं देता है। उस अन्धे ने उत्तर दिया कि यह लालटेन आपके लिए है। आप जैसे लोग आँखों के होते हुए भी मुझसे टकरा जाते हैं। कितना तथ्य है इस घटना में। अन्धा देख नहीं सकता और हम देखते हुए भी अन्धे हैं। वेद का प्रकाश हमें राह दिखा रहा है फिर भी हम टकराते हैं क्यों-बिजली की चकाचौंध में हम कहां गिरेंगे और हमारा क्या होगा? खाना-पीना, दिन में सोना और रात को जागना, इसकी नकल, उसकी नकल, यही सब करके समझना कि यही मेरा व्यक्तित्व है। अपनापन खोकर, दूसरों की खाल ओढ़कर अभिमान कर लेना गौरव की बात नहीं है। जिस भूमि पर जन्म लिया हो उसकी परम्परा और सभ्यता को निभाना बहुत बड़ी बात है। समाज की नींव जिस परम्परा पर आधारित है, उसी पर उसके अनुरूप भवन बनाना चाहिए। अपनी संस्कृति और सभ्यता को भूलकर मनुष्य उन्नति नहीं कर सकता। दूसरे के अच्छे नक्शे को अपने ढांचे मे बिठाना चाहिए। आज मनुष्य का उद्देश्य केवल पैसा बन गया है। आज का मनुष्य भौतिक उन्नति के द्वारा सब प्रकार के सुख प्राप्त करना चाहता है। गाड़ी, बंगला, जमा पूंजी इकट्ठी करना ही मनुष्य का लक्ष्य है। हमने शरीर को भोजन दिया पर मन भूखा ही रह गया। अन्त के साथ उपासना भूल गए हैं। हमें याद रखना होगा कि भौतिक सुख शरीर को पुष्ट करेगा। वैसे ही उपासना मन को पुष्ट करेगी। पुष्ट मन शरीर की इच्छाओं पर काबू पा सकेगा। इसलिए शरीर और आत्मा का मेल बुद्धिपूर्वक करना बहुत ही जरूरी है। विवेक व बुद्धि का सदुपयोग करना मनुष्य की विशेषता है। मनुष्य मनुष्य नहीं कहलाता जब तक वह बुद्धि के द्वारा अपने कार्यों को सोच विचार कर नहीं करता। अच्छे-बुरे, लाभ-हानि, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, धर्म-अधर्म की विवेचना करना बुद्धिमानों का काम है। इसी को जीवन का मूल्य समझना चाहिए। जीवन देने वाला, उसे बनाने वाला और चलाने वाला कौन है? यह जान लेने के बाद मन में जो आस्था उत्पन्न होती है और उसी आस्था के आधार पर मनुष्य अच्छे कर्मों को करने का संकल्प करता है। वेदों के आधार पर मनुष्य कर्म करने का संकल्प करता है तो उसकी चेतना जागृत होती है। वेद मन्त्र कहता है कि-

स्वस्ति पन्थामनुचरेम् सूर्याचन्द्रसाविव।
पुनर्ददताऽघ्नता जानता संगमेमहि।।

अर्थात् सूर्य और चन्द्र के समान हम कल्याणकारी मार्ग पर चलें और दानी, अहिंसक तथा विद्वान् पुरुषों का साथ करें। वेद का आदेश है कि हम कल्याणकारी मार्ग पर चलने का प्रयास करें। जिस प्रकार सूर्य चन्द्र अपनी निश्चित स्थिति पर रहते हुए पृथ्वी पर दिन और रात का सृजन कर जीव मात्र का कल्याण करते हैं उसी तरह हमें भी नियमित जीवन के द्वारा दूसरों का कल्याण करना चाहिए। सूर्य और चन्द्र का प्रकाश पाने के लिए पृथ्वी निरन्तर घूमती रहती है। उसे किसी बात का प्रलोभन नहीं, इसलिए वह ईश्वर की कृपा से दिन और रात का वरदान पाकर जीव मात्र का कल्याण करती है।

नारी की तुलना पृथिवी से की गई है। उसे लोभ और मोह से दूर रहकर बच्चों को नियमित जीवन की आदत डालनी चाहिए। क्योंकि लालच और मोह मन को भटका देते हैं और हम प्रलोभनों के घेरे में बन्द हो जाते हैं। माता-पिता को सन्तान का निर्माण करते समय नारियल के फल के समान व्यवहार करना चाहिए जो देखने में ऊपर से कठोर होता है परन्तु भीतर से कोमल होता है। माता का हृदय समुद्र के समान विशाल होता है और उसके हृदय में अपनी सन्तान के हित की कामना होती है। माता चाहे तो अपनी सन्तान को धार्मिक, विद्वान्, सभ्य, देशभक्त और चरित्रवान बना सकती है परन्तु यदि लाड़ प्यार में उसकी गलतियों पर ध्यान नहीं देती, उसके कार्यों पर ध्यान नहीं देती तो सन्तान कुमार्ग पर चल पड़ती है। माता बालक का लालन पालन करके उसे महान् बनाने का स्वप्न देखती है। उस स्वप्न को वह तभी पूर्ण कर सकती है जब वह उसके अन्दर सद्गुणों का विकास करके उसे अपनी सभ्यता, संस्कृति और मातृभूमि का उपासक बना दे। अपनी संस्कृति, सभ्यता और मातृभूमि को भूलकर मनुष्य कभी महान् नहीं बन सकता।

-प्रेम भारद्वाज संपादक एवं सभा महामन्त्री

thearyasamaj.org

यदि ईश्वर वेद ज्ञान न देता तो मनुष्य पशु ही रह जाता

-ले० खुशहाल चन्द्र आर्य गोविन्द राम एण्ड सन्स, 180 महात्मा गांधी रोड कोलकाता

ईश्वर ने मनुष्य के सहयोग के लिए जिससे वह अपना जीवन सुचारू रूप से चला सके। इस उद्देश्य से सृष्टि की रचना की जिसमें सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, जल, वायु, समुद्र, नदी-नाले, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि बनाए। सृष्टि रचने के बाद ईश्वर ने तिब्बत के पठार पर एक कृत्रिम गर्भाशय बनाकर उसमें राजवीर्य का समावेश करके युवा लड़के-लड़कियां उत्पन्न की जिससे आगे भी सृष्टि चलती रहे। यदि ईश्वर मनुष्य उत्पत्ति के समय युवाओं को उत्पन्न न करके यदि बच्चे या वृद्ध पैदा करता तो बच्चों का पालन-पोषण कौन करता? और वृद्धों से आगे का संसार नहीं चलता। इसीलिए नवयुवक व नवयुवतियां उत्पन्न की। ईश्वर ने मनुष्यों की उत्पत्ति के साथ ही चार ऋषियों जिनके नाम अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा था, जिनके कर्म सर्वोत्तम होने से पुण्य आत्माएं थी, उनके मुख से चार वेद जिनके नाम ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद हैं। इनको उनके मुख से उच्चारित करवाया। वैसे ये वेद, ईश्वरीय ज्ञान है। ऋषियों के मुख से तो केवल उच्चारित ही करवाया है। जैसे माईक में मनुष्य बोलता है, माईक तो केवल इसकी आवाज़ को तेज़ आवाज़ में प्रसारित कर देता है। ठीक इसी प्रकार ईश्वर, वेद ज्ञान को ऋषियों के हृदय में प्रकाशित कर देता है और ऋषियों ने उस ज्ञान को अपने मुख से उच्चारित करके सब मनुष्यों के सामने प्रकट कर दिया। वैसे तो वेद ज्ञान उपस्थित सभी लोगों ने सुना पर ब्रह्म ऋषि जो सबसे अधिक प्रखर और तीव्र बुद्धि वाले थे, उन्होंने वेद ज्ञान को सुनकर कण्ठस्थ कर लिया और फिर वे उपस्थित लोगों को सुनाने लगे। उपस्थित लोग अपने पुत्र व पौत्रों को सुनाने लगे। इस प्रकार यह परम्परा लाखों, करोड़ों वर्ष तक चलती रही। जब कागज़, स्याही, कलम, दवात का आविष्कार हो गया तो यह चारों वेद लिपिबद्ध कर दिये गए। तब से अभी तक चले आ रहे हैं। इसलिए वेदों का दूसरा नाम श्रुति भी है यानि सुनकर व सुनाकर चलने वाला ज्ञान। मैं यहां यह लिखना अति आवश्यक समझता हूं कि वैदिक धर्म की महानता यह है कि यह ईश्वरीय ज्ञान होने से मानव मात्र का धर्म है। इसमें मानव-मात्र के लिए ही नहीं बल्कि प्राणी मात्र के लिए भी कोई भेदभाव या कोई छोटा-बड़ा नहीं है कारण ईश्वर सबका पिता है और सब जीव उसके पुत्रवत् है। इसलिए किसी प्रकार का भेदभाव होने का प्रश्न ही नहीं उठता। बाकी जितने भी मत, पंथ, सम्प्रदाय हैं जिनको धर्म भी कहा जाता है, वे सब मनुष्यों के बनाए हुए हैं। मनुष्य चाहे कितने भी महान् क्यों न हो, परन्तु मनुष्य होने के नाते अल्पज्ञ प्राणी है। उसमें अपना और पराए का भेदभाव कम या अधिक अवश्य रहेगा। इसलिए अन्य जितने भी मत, पंथ व सम्प्रदाय हैं वे अपने ही मानने वालों का पक्ष लेते हैं यानि उनके ही हित चिन्तक हैं, दूसरों के नहीं। पर वैदिक धर्म ही एक मानवीय धर्म है जो सबके लिए समान है।

इसी विषय को आगे बढ़ाते हुए यह लिखना उचित है कि ईश्वर ने मनुष्य को पांच ज्ञानेन्द्रियां दी हैं, उनके लिए ईश्वर ने पांच जड़ देवता जिनको तत्त्व भी कहते हैं, दिए हैं। जिनके द्वारा ज्ञानेन्द्रियों में वह शक्ति आती है जिससे वे अपना काम कर पाती है। जैसे आंखों के लिए ईश्वर ने जड़ देवता अग्नि बनाया है जिससे आंखें रूप देख पाती हैं। इसी प्रकार कानों के लिए आकाश बनाया है जिससे कान शब्दों को सुनता है। नाक के लिए पृथ्वी बनाई है जिससे नाक गन्ध या दुर्गन्ध का ज्ञान करता है। जिह्वा के लिए ईश्वर ने जल देवता पानी बनाया है जिससे वह रस का अनुभव कर सके। त्वचा के लिए हवा बनाया है। जिससे त्वचा स्पर्श का अनुभव कर सके। यह पांचों तत्व ईश्वर मनुष्य की उत्पत्ति से पहले ही बना देता है। मनुष्यों में एक इन्द्री और होती है जिसे बुद्धि कहते हैं। यह मनुष्यों में अन्य जीवों से अधिक होती है। इस बुद्धि के लिए ईश्वर ने वेद ज्ञान दिया है जिसके पढ़ने व सुनने से बुद्धि में ज्ञान की वृद्धि होती है और वेद ज्ञान से बुद्धि यह समझ पाती है कि मुझे क्या काम करना चाहिए और क्या काम नहीं करना चाहिए। वेद ज्ञान, मनुष्य का बुद्धि के द्वारा पथ-प्रदर्शन करता है जिससे वह अच्छे व पुण्य कार्यों को करता हुआ मोक्ष की ओर अग्रसर होता है, जो जीव का अन्तिम लक्ष्य है यह मनुष्य योनि में ही प्राप्त होता है। जैसे एक वैज्ञानिक कोई मशीन बनाता है, तो उसका कैसे प्रयोग किया जावे इसके लिए वह प्रयोग करने की विधि या तरीका एक छोटी पुस्तक में लिख देता है जिसको देखकर उस मशीन का प्रयोग करने वाला प्रयोग करता है, इसी प्रकार ईश्वर ने मनुष्यों की उत्पत्ति के साथ ही यह वेद ज्ञान दे दिया जिसको पढ़कर या सुनकर अपने व दूसरों के जीवन को सुचारू रूप से चला सके और अन्त में मोक्ष को प्राप्त कर सके।

यहां आपको यह बताना बहुत ज़रूरी है कि जीवों में दो किस्म का ज्ञान होता है। एक स्वाभाविक दूसरा नैमित्तिक। स्वभाविक ज्ञान पशु-पक्षियों में अधिक होता है कारण उनको इसी ज्ञान से पूरा जीवन व्यतीत करना होता है। इस ज्ञान से जीव खाना-पीना, सोना-जागना, उठना-बैठना तथा बच्चे पैदा करना ही नित्य कर्म कर सकता है, इसका जीव को कोई फल नहीं मिलता। नैमित्तिक ज्ञान वह होता है जो सीखने से सीखा जाए। यह ज्ञान पशु-पक्षियों में बहुत कम और मनुष्यों में बुद्धि अधिक होने के कारण यह ज्ञान भी अधिक होता है। कारण इस ज्ञान का बुद्धि से सम्बन्ध है। आप देखते होंगे कि कुत्ते का बच्चा पैदा होते ही पानी में तैरने लग जाता है कारण यह कुत्ते के लिए स्वाभाविक ज्ञान है। पर मनुष्य का बच्चा, पैदा होते ही पानी में नहीं तैर सकता। यदि पानी में छोड़ोगे तो वह डूब जाएगा और जब तक इसको तैरना सिखाया नहीं जाएगा तब तक वह पानी में नहीं तैर सकेगा कारण यह मनुष्य के लिए नैमित्तिक ज्ञान है।

मनुष्य का स्वाभाविक ज्ञान, खाने-पीने, सोने-जागने, उठने-बैठने तक ही सीमित है। बाकी काम वह सिखाने से सीखता है। स्वाभाविक ज्ञान के कार्यों में मनुष्य को भी फल नहीं मिलता, बाकी नैमित्तिक ज्ञान से किए हुए अच्छे या बुरे कार्यों का ईश्वर मनुष्य को अच्छे कार्यों का सुख के रूप में, बुरे कार्यों का दुःख के रूप में फल देता है। मनुष्य की पढ़ाई, लिखाई सब नैमित्तिक ज्ञान से होती है। इसलिए ईश्वर ने मनुष्य को अपना तथा दूसरों के जीवन को सुखी व उन्नत बनाने के लिए उसे क्या काम करने चाहिए और क्या काम नहीं करने चाहिए। इसीलिए ईश्वर ने मनुष्य की उत्पत्ति करते ही, उसे चार ऋषियों द्वारा चार वेदों का ज्ञान दे दिया। जिनको सुनकर या पढ़कर वह अपने जीवन को शुभ कार्यों को करते हुए उत्तरोत्तर उन्नत व समृद्धशाली बना सके, साथ ही अष्टांग योग द्वारा यम, नियमों को जीवन में धारण करते हुए आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान को करते हुए समाधि का आनन्द ले सकें और मृत्यु के बाद मोक्ष के परम आनन्द को ईश्वर के सान्निध्य में रहते हुए प्राप्त कर सकें जो जीव का अन्तिम लक्ष्य है। इसके बाद मनुष्य की कोई इच्छा बाकी नहीं रह जाती है यानि यह मनुष्य की अन्तिम इच्छा है। यदि ईश्वर प्रारम्भ में ही मनुष्यों को वेद ज्ञान नहीं देता, तो मनुष्य भी अन्य पशु-पक्षियों की भांति असभ्य रूप में रहता हुआ पशुवत् ही अपना जीवन व्यतीत करता। इसलिए सभी मनुष्यों को अभीष्ट है कि वह वैदिक धर्म को अपनाकर अपने व अन्यों के जीवन को उन्नत व सफल बनाए।

thearyasamaj.org

अतिथि सत्कार तथा उससे लाभ

-ले० शिव नारायण उपाध्याय 73 शास्त्री नगर, कोटा

वैदिक वाङ्मय में अतिथि को देवता माना जाता है और इसलिए परिवार में जब कोई अतिथि आता है तो उसको बड़ा सम्मान दिया जाता है। उसके लिए भोजनादि की विशेष व्यवस्था की जाती है तथा जब इस बात का ध्यान रखा जाता है कि उसे किसी भी प्रकार से कोई असुविधा न होवे। परिवार के लोग उससे विभिन्न विषयों पर वार्तालाप कर उसके ज्ञान से अपने ज्ञान में बढ़ोत्तरी करते हैं।

अतिथि सत्कार के विषय में जैसा विस्तृत वर्णन अथर्ववेद में हुआ है वैसा वर्णन अन्यत्र कहीं भी मेरे पढ़ने में नहीं आया। अथर्ववेद काण्ड 15 के सूक्त संख्या 10 से लेकर 18 तक इसी विषय पर चर्चा की गई है। कुल 102 मंत्रों में इसी विषय पर गहन विचार विमर्श हुआ है। हम उसमें से कुछ मंत्रों को आधार बनाकर इस विषय पर पाठकों को कुछ बताने का प्रयत्न कर रहे हैं।

अथर्ववेद कहता है, जब ब्रह्म वेत्ता, सदाचारी, नित्य मिलने योगपुरूष जब किसी राजा से मिलने उसके घर पर आवे तब राजा यह विचार करे कि अतिथि मुझसे अधिक ज्ञानवान, सदाचारी तथा ब्रह्म को जानने वाला है उसका सत्कार करे। इससे राजा को कोई दोष नहीं लगता है और न ही राज्य के ऊपर भी कोई दोष आता है।

यहां यह दोष लगने वाली बात इसलिए आई है कि सामान्य तथा राजा अथवा सर्वोच्च शासक को राज्य का प्रथम पुरूष माना जाता है अतः वह सभी के द्वारा सम्मानित है तब वह अतिथि का सम्मान करने आगे क्यों आवे तथा राजा का अपमान सम्पूर्ण प्रजा का अपमान माना जाता है तो राजा कोई ऐसा कार्य क्यों करे क्यों किसी व्यक्ति को सम्मानित कर प्रजा की निगाह में नीचे गिरे परन्तु यह सोच ठीक नहीं है। उसका सम्मान करने से राजा छोटा नहीं हो जाता वरन् उसकी क्रिया से तो वह जनता में और अधिक लोकप्रिय हो जाता है।

राजा को ऐसे वेद वेत्ता लोगों को सत्कारित कर यह जानना चाहिए। इसलिए अथर्ववेद में कहा गया है, इस अतिथि सत्कार से निश्चित रूप से ब्रह्म ज्ञानी कुल और क्षत्रिय कुल दोनों की उन्नति होती है, दोनों ऊंचे उठते हैं। वे दोनों विचार विनिमय कर तय करें कि हमें सबकी उन्नति के लिए क्या करना चाहिए। इस अतिथि सत्कार से निश्चय करके ब्रह्म ज्ञानी कुल बड़े-बड़े प्राणियों के रक्षक गुण में भी प्रवेश करता है और उसी प्रकार अतिथि सत्कार से निश्चय करके क्षत्रिय कुल परम ऐश्वर्य में प्रवेश करता है। अतिथि ब्रह्मवेत्ता को इस प्रकार उपदेश करना चाहिए।

ब्रह्म ज्ञान और प्रजा पालन का ज्ञान यदि संयुक्त हो जावे तो निश्चित रूप से प्रजा का हर दृष्टि से विकास होता है और राजा भी सूर्य समान तेजस्वी बन जाता है। इस दृष्टिकोण को सम्मुख रख कर वेद का कथन है, यह अग्नि समान तेजस्वी निश्चय करके ब्रह्म ज्ञानी समूह की है और वह सूर्य समान प्रतापी क्षत्रिय समूह है।

इसी प्रकार सामान्य गृहस्थ भी ब्रह्म वेत्ता अतिथि का सम्मान करके ब्रह्म वर्चसी बने। इस विषय पर वेद का उपदेश है, उस ब्रह्मज्ञानी समूह से मिलकर वह गृहस्थ ब्रह्मवर्चस्वी बन जाता है।

अगले सूक्त में वर्णन है कि ब्रह्मवेत्ता अतिथि का सत्कार कैसे करें ?

वेद उपदेश करता है कि, जब व्यापक परमात्मा को जानने वाला सद् व्रतधारी अतिथि किसी गृहस्थ के घर पर आवे तो गृह स्वामी स्वयं उठकर आगे जाकर अतिथि का सम्मान करते हुए कहे, हे अतिथि देव। आप कहां से आ रहे हैं ? रात्रि को कहां विराजमान थे ? फिर उसको जल देकर कहे, यह जल लीजिए। हे व्रात्य आप हमें तृप्त करें और यह जल आपको तृप्त करें। हे व्रात्य। आपकी क्या आज्ञा है ? जैसी आपकी आज्ञा होगी वैसा ही हम करेंगे। हे व्रात्य। जिसमें आपको प्रधानता मिले, आराम मिले वैसा ही हम करेंगे।

फिर गृहस्थ लोग अतिथि को उनके प्रिय पदार्थ अर्पण करे। वेद कहता है, जब गृहस्थ उस अतिथि से नम्रतापूर्वक कहता है कि हे उत्तम व्रतधारी। जैसा भोजनादि पदार्थ आपको प्रिय लगे वैसा ही हम करना चाहते हैं। ऐसा कहकर वास्तव में वह गृहस्थ अपने प्रिय पदार्थ (ब्रह्म ज्ञान) को सुरक्षित कर लेता है। अतिथि की सेवा करने से गृहस्थ को अपना प्रिय पदार्थ प्राप्त हो जाता है और वह इष्ट मित्रों का भी प्रिय बन जाता है जो ऐसे अतिथि को जानता है।

गृहस्थ को चाहिए कि आप्त विद्वान् अतिथि का अनेक प्रकार से सत्कार करके उन्नति की अपनी कामनाओं से पूर्ण करें। वेद का कथन है, उस गृहस्थ को लालसा आकर मिलती है। वह लालसा की निरन्तर पूर्ति में मग्न होता है जो गृहस्थ ऐसे विद्वान् को जानता है।

जिस समय यदि आप कोई काम कर रहे हैं और अतिथि आ जावे तो आपका कर्त्तव्य है कि वे उस कार्य को स्थगित कर दें अथवा अतिथि की आज्ञा लेकर उसे पूर्ण करें।

वेद का उपदेश है कि यदि व्यापक परमात्मा को जानता हुआ कोई व्रात्य (सत्य व्रतधारी अतिथि) उस समय आ जावे जब आप यज्ञ कर रहे हैं और ऊंची उठी अग्नि की लपटों के बीच हवन सामग्री की आहुति दे रहे हैं तब भी आप उठकर ब्रह्मज्ञानी अतिथि को सम्मान देते हुए विनम्रता से कहे, हे व्रात्य। कृपया आज्ञा दीजिए कि मैं हवन पूर्ण कर लूं।

फिर यदि वह अतिथि आज्ञा देवे तो गृहस्थ हवन को पूर्ण करे आज्ञा न देवे तो गृहस्थ यज्ञ भी न करे। आगे वेद कहता है कि, जो गृहस्थ व्यापक परमात्मा को जानते हुए भी व्रात्य (सत्य व्रतधारी अतिथि) के द्वारा आज्ञा दिए जाने पर यज्ञ करता है, वह गृहस्थ पितरों (पालन कर्त्ता बड़े लोगों) के चलने योग्य मार्ग को अच्छी प्रकार जान लेता है और देवताओं के चलने योग्य मार्ग को भली प्रकार जान लेता है। वह विद्वानों के बीच तनिक भी दोषी नहीं होता है। यह गृहस्थ का यज्ञ वास्तव में यज्ञ होता है। इस संसार में उस गृहस्थ की मर्यादा सब प्रकार शेष रह जाती है जो गृहस्थ व्यापक परमात्मा को जानते हुए व्रात्य (सत्य व्रतधारी अतिथि) की आज्ञा दिया हुआ होकर यज्ञ करता है।

अगले मंत्रों में इसके विपरीत कार्य करने वाले गृहस्थ को कुमर्यादित मानकर कहा गया है कि उसके शुभ कार्य सिद्ध नहीं होते हैं। अतिथि के सत्कार के विषय में तो हमने पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर ली है परन्तु हमें अतिथि से क्या सीखना है इस पर विचार करते हैं। इस विषय में भी अथर्ववेद में कई बातें बताई गई हैं जो हमें अतिथि से सीख लेनी चाहिए। इस विषय पर वेद का कहना है, यदि व्यापक परमात्मा को जानने वाला सत्य व्रतधारी अतिथि गृहस्थ के यहां एक रात्रि ही निवास करे तो गृहस्थ उससे पृथ्वी पर जो दर्शनीय समाज है उन समाजों के विषय में अतिथि से निश्चित रूप से जानकारी लेवे। अतिथि सत्कार के फलस्वरूप गृहस्थ इस जानकारी को सुरक्षित कर लेता है। गृहस्थ का भाव यह रहे कि अतिथि अधिक से अधिक दिन उसके घर में निवास करे। यदि ऐसा हो जावे तो यदि व्यापक ब्रह्म को जानता हुआ व्रात्य दूसरी रात्रि गृहस्थ के घर में बस जाता है तो गृहस्थ उससे अन्तरिक्ष में जो पवित्र लोक हैं उनके विषय में निश्चित रूप से प्रश्न करके अन्तरिक्ष लोकों का ज्ञान भी सुरक्षित कर लेवे।

अधिक आग्रह करने पर अतिथि तीसरी रात्रि भी गृहस्थ के पास ठहर जावे तो गृहस्थ को उससे ज्योतिष विद्या का ज्ञान प्राप्त कर लेने का प्रयत्न करना चाहिए। अतिथि द्वारा ज्योतिष विद्या को फिर अपने लिए सुरक्षित भी कर लेना चाहिए।

(शेष पृष्ठ 6 पर)

thearyasamaj.org

अधर्म के अन्धकार को धर्म के प्रकाश से प्रज्वलित करना

ऋग्वेद में 'सरमा' (योगी-आत्मा) का 'पणयः' (सांसारिक धन के लोभीजन) के प्रलोभनों को त्याग कर धर्म के मार्ग पर

-ले० मृदुला अग्रवाल 19 सी, सरत बोस रोड कोलकाता

इन्द्र की गौओं को (गौओं का अर्थ यहां 'ज्ञान' है या आत्मा की दिव्य वृत्तियां) पणियों ने (सांसारिक माया एवं लोभ-मोह के आवरणों से ग्रस्त लोग) चुराकर अज्ञानरूपी अन्धकार में कैद कर लिया। इन्द्र ने अपनी कुतिया 'सरमा' अर्थात् योगी की अन्तरात्मा को गौओं का पता लगाने के लिए भेजा। इन्द्र द्वारा प्रेषित सरमा ने गौओं का पता लगाया एवं पणियों को इन्द्र का संदेश सुनाने की चेष्टा की। परन्तु संसार के लोभी-धनियों को अपने पाप युक्त शरीर से सिर्फ और सिर्फ अनुचित मार्ग ही दिखता है। वे कामभोगोपलिप्त धनिक तो सांसारिक सम्पत्तियों की मोह-रूपी नदियों के जल में इतनी गम्भीरता से डूबे हुए हैं कि उन्हें अपनी आसुरी वृत्तियों का, नास्तिकता का, परलोक के अच्छे-बुरे मार्गों का, अपने इस जन्म एवं अगले जन्म के सुख व दु:ख का कुछ भी बुरा या गलत दृष्टिगोचर नहीं होता। वे 'सरमारूपी वेदवाणी' के वक्तव्य को व्यर्थ समझकर संसारी वैभव व धन की रक्षा करने को ही उत्सुक हैं। वे भूल गए हैं कि ईश्वर किसी भी अधर्मी, अनियमित आसुरी वृत्ति वाले इन्सान का साथ नहीं देता।

कुछ समय के लिए इन संसारी लोभ से ग्रस्त पणियों को भी ईश्वरीय ज्ञान जैसे प्राप्त होता है। वे इन्द्रदूती 'सरमा' से पूछने की कोशिश तो करते हैं कि इन्द्र क्या है ? उसका दर्शन-विज्ञान क्या है? अगर हम उसे मित्र बनाते हैं या उसके निर्देश पर चलते हैं तो क्या वह हमारी गौओं का रक्षक बन जाएगा ? परन्तु यह सब व्यर्थ ही पूछते हैं, क्योंकि कुछ समय पश्चात् ही देवदूती सरमा को धन-वैभव का प्रलोभन देकर उसे अपनी बहिन बनाना चाहते हैं। 'सरमा'-अन्तरात्मा की आवाज़ लोभी-कामियों को रोकती है तब उसे भी बाहरी विषयों के प्रलोभन थोड़े वक्त के लिए अपनी ओर खींचते हैं। परन्तु वह प्रलोभनों से आकर्षित नहीं होती। वरंच वह अपने विवेक के द्वारा सही और गलत को विचार कर सही का साथ देती है, क्योंकि अंगिरा ऋषि और इन्द्र आदि की योगयुक्त तपोमय तेजस्विनी शक्तियां उस पर आच्छादित हैं। उनके प्रति कर्त्तव्य परायण 'सरमा' इस पाप रूपी या पाप से युक्त शरीर में प्रवेश करती है एवं अपनी हितकारिणी शक्ति से इस संसार रूपी लोभ-मोह से ग्रस्त नदी के जल को पार करने में समर्थ एवं सक्षम होती है। वह अपने कर्त्तव्य पर, धर्म के मार्ग पर अडिग रहती है। उन धन-लोभियों के प्रलोभनों को ठुकरा देती है। उनकी बहिन बनने से भी इन्कार कर देती है।

धन लोभी तो सरमा से यहां तक भी बोले कि वे भोग का त्याग, इन्द्रियों का संयम, असत्य के पथ से युद्ध करके सत्य पथ की ओर अग्रसर होना ही नहीं चाहते, क्योंकि सत्य-पथ का अनुसरण करने के लिए 'मन' पर संयम करना अत्यन्त आवश्यक है। श्री कृष्ण ने भगवद् गीता में इस प्रकार कहा कि-

''असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥''

-गीता, अध्याय-६, श्लोक-३५

अर्थात्-हे महाबाहो, हे कौन्तेय! मन पर अंकुश रखना तो तीव्र वैराग्य के अभ्यास से ही हो सकता है ? नि:संदेह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है। इसलिए, हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! इस स्थिति के लिए बारम्बार यत्न करके मन को अवश्य ही वश में करना चाहिए।

सरमा ने भी इसी प्रकार प्राणियों की धन-लोलुपता को ईश्वरीय ज्ञान से नष्ट किया। जिस प्रकार कठोपनिषद में ''यम-नचिकेता संवाद'' में भी जब यम के दो वरदान देने के पश्चात् तीसरे वरदान को देने में आनाकानी की एवं नचिकेता को विभिन्न प्रकार के सांसारिक प्रलोभनों से लुभाने की चेष्टा की, तब नचिकेता ने भी सांसारिक धन-सम्पत्ति एवं पारलौकिक स्वर्ग के सुख को ठुकरा दिया। वह तो आत्म-साक्षात्कार कर जन्म-मृत्यु के बन्धन से छुटकारा पाना चाहता था। यम से उसने यही प्रार्थना की एवं अमृतपद की प्राप्ति भी की। यही तीसरा वरदान कठोपनिषद का सार एवं ब्रह्मज्ञान की कुंजी है।

ठीक इसी प्रकार ईश्वरीय ज्ञान से प्रभावित एक नि:स्पृह योगी की आत्मा 'सरमा' ने पणियों की आसुरी वृत्तियों का विनाश कर अपनी देववाणी से उनकी दिव्य-वृत्तियों का उद्धार किया। अपनी तेजस्विनी शक्तियों के द्वारा उन्हें सत्य-पथ की ओर अग्रसर किया। अधर्म को छोड़कर धर्म के उज्जवल मार्ग की ओर प्रशस्त किया। सरमा ने पणियों के दिए हुए प्रलोभनों का त्याग किया, क्योंकि इन्द्र का सच्चा दूत अपने धर्म से नहीं डिगता। यह रोचक काव्य-वृत्ति से भरा संवाद ऋग्वेद के आध्यात्मिक बल को एवं ईश्वरीय ज्ञान को और भी सशक्त बना देता है।

ऋग्वेद, मण्डल-१०, सूक्त-१०८, मन्त्र १ से ११ तक से उद्धृत है।

पृष्ठ 4 का शेष- अतिथि सत्कार.....

वेद की आज्ञा का पालन करने वाला व्रात्य किसी भी गृहस्थ के पास तीन दिन से अधिक निवास नहीं करता है।

गृहस्थ को चाहिए कि वह अतिथि के हर कार्य का सूक्ष्म निरीक्षण करता रहे इससे उसे उत्तम सभ्यता का ज्ञान अनायास प्राप्त हो जावेगा। यदि कभी मनुष्यों को किसी बड़े विद्वान् का सानिध्य लम्बे समय के लिए प्राप्त हो जावे तो वह उससे ब्रह्म विद्या, राज्य विद्या आदि अनेक शुभ विद्याएं प्राप्त कर अपनी उन्नति करे।

वेद में कहा गया है, यदि व्यापक परमात्मा को जानने वाला व्रात्य कई रात्रियों के लिए किसी गृहस्थ के घर में निवास करता है तो निश्चय करके जो असंख्य पवित्र लोक हैं उनके विषय में गृहस्थ अतिथि से ज्ञान प्राप्त कर उसे सुरक्षित रखे।

ब्रह्मज्ञानी विद्वान् अतिथि अपने लगातार सदुपदेशों, सत्कर्मों और सत् पराक्रमों से लोगों को बलवान बना कर संसार की रक्षा करता है। फिर आगे कई मंत्रों में बताया गया है कि व्रात्य सत्य व्रतधारी अतिथि हमें किसी प्रकार रक्षित कर देता है। व्रात्य हमको नाना प्रकार की ओषधियों के विषय में भी ज्ञान देता है।

उसका देशाटन वेद विद्या के प्रचार के लिए ही होता है। वह गृहस्थ को शरीर विज्ञान के विषय में भी बताता है। वह शरीर के भीतर जाने वाले सात प्राण और शरीर के बाहर निकलने वाले सात अपान और सम्पूर्ण शरीर में फैले हुए सात व्यान के विषय में भी गृहस्थ को ज्ञान देता है।

वेद में इनको एक-एक कर बताया भी गया है परन्तु यहां विषय के विस्तार के भय से उसे छोड़ देते हैं। ऐसे ब्रह्मज्ञानी व्रात्य का सामर्थ्य भी बहुत अधिक होता है। वेद में उसके सामर्थ्य का भी पर्याप्त वर्णन हुआ है। व्रात्य लगातार उन्नति करता है। वेद में कहा गया है, व्रात्य (सत्य व्रतधारी अतिथि) दिन के साथ सामने जाने वाला और रात्रि के साथ आगे को चलने वाला है। व्रात्य को गृहस्थ का नमस्कार होवे।

thearyasamaj.org

रस्म भोग

14.9.2014 दिन रविवार ला. वजीर चन्द की इच्छानुसार उनका पार्थिव शरीर 7.9.14 को आदेश हस्पताल बठिण्डा को दान में भेज दिया गया था और 14.9.2014 को सुबह 10 बजे आर्य समाज मन्दिर में उनके परिवार द्वारा उनकी आत्मा की शान्ति के लिए हवन यज्ञ किया गया। दोपहर 1 से 2 बजे तक शहर की भिन्न-भिन्न संस्थाओं के बहुत ही प्रतिष्ठित लोगों ने श्रद्धांजलि भेंट की। यह सारा कार्यक्रम स्वामी सूर्यदेव के सानिध्य में सम्पन्न हुआ। आर्य समाज के प्रधान तथा मन्त्री श्री गौरी शंकर तथा नवनीत कुमार की मेहनत से समाज में सारा कार्यक्रम ठीक सम्पन्न हुआ। आर्य समाज को परिवार की ओर से 31000 रुपए (इकत्तीस हजार) दान दिया गया तथा शहर की बाकी सारी संस्थाओं को यथा योग्य करीब एक लाख रूपए का और दान दिया गया।

-पी. डी. गोयल एडवोकेट

श्री सत्यपाल जी पथिक अस्वस्थ

आर्य भजनोपदेशक 'आर्य रत्न' पंडित सत्यपाल जी पथिक को 11 सितम्बर रात्रि हार्ट-अटैक हुआ। एस्कॉर्ट अस्पताल अमृतसर के I.C.U. में भर्ती हुए। 12 सितम्बर को हृदय में स्टंट डाले गए, ईश्वर की महान कृपा से आपको अस्पताल से छुट्टी मिली। आप 14 सितम्बर को घर वापिस लौटे हैं। प्रभु की कृपा बनी रहे तथा आप सभी की मंगल कामनाएं व प्रभु से प्रार्थना द्वारा आप पूर्ण स्वस्थ हो जाएं। ऐसी हमारी कामना है कि अब आप ठीक हैं, घर पर ही स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं।

-मधुरानन्दा सरस्वती

आर्य समाज बुढ़लाड़ा में साप्ताहिक सत्संग

आर्य समाज बुढ़लाड़ा में श्री नारायण सिंह जी महोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब जालंधर से आए और उनकी देख-रेख में वेद प्रचार एवं हवन यज्ञ सम्पन्न हुआ। यज्ञ के यज्ञमान श्री रघुनाथ सिंगला कोषाध्यक्ष रहे। श्री सुशील कुमार जी पुरोहित ने वेद मन्त्रों का पाठ उपदेश किया। प्रभु भक्ति के गीत गाएं गए। उपरान्त श्री नारायण सिंह जी का ओजस्वी वेदोपदेश हुआ। उन्होंने पांच महायज्ञों के विषय में विस्तारपूर्वक जानकारी दी। स्वर्ग व नरक की सुख, दुख, कर्मों के अनुसार मिलता है, हमें शुभ कर्म करने चाहिए। कोई भी व्यक्ति कर्म के बिना नहीं रह सकता, इसलिए हमें शुभ कर्म ही करने चाहिए। हमें हर प्रकार की बुराई से बचना चाहिए। शुभ कर्म व प्रभु भक्ति से आत्मा बलवान बनती है। इसका उपदेश किया। उपरान्त शान्ति पाठ सभी उपस्थित आर्यजनों के लिए चाय पानी एवं मिष्ठान इत्यादि का ऋषि प्रसाद का प्रबन्ध था। आर्य समाज के प्रधान जी एवं सभी सदस्यों ने श्री नारायण सिंह जी का सस्नेह आदर सत्कार मान सम्मान किया। इस समारोह में श्री मुन्नी लाल जी शर्मा, स. हरबंस सिंह जी सिंगला, स. रणजीत सिंह हैपी, श्री कृष्ण लाल जी प्रवक्ता, श्री मदन लाल जी, श्री बिजेन्द्र कुमार जी, श्री दीवान चन्द जी वर्मा, बृज लाल कुलाना ने और गणमान्य व्यक्तियों ने भाग लिया।

-अमरनाथ सिंगला

आर्य समाज धारीवाल का वेद सप्ताह

आर्य समाज धारीवाल जिला गुरदासपुर का वेद सप्ताह 10, 11 और 12 अक्तूबर 2014 को बड़ी धूमधाम से मनाया जा रहा है। इस अवसर पर आर्य समाज में प्रातः और सायं आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महोपदेशक श्री विजय शास्त्री जी के प्रवचन और श्री अरुण कुमार जी वेदालंकार के मधुर भजन होंगे। सभी धर्म प्रेमी सज्जनों से निवेदन है कि यह इस अवसर पर पहुंच कर धर्म लाभ उठावें।

अध्यापक दिवस पर विशेष

5 सितम्बर भारत के पूर्व राष्ट्रपति स्व. डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन का जन्म दिवस शुक्रवार को दयानन्द पब्लिक स्कूल दीपक सिनेमा रोड़ लुधियाना में अध्यापक दिवस के रूप में मनाया गया। स्कूल में आज सीनियर विद्यार्थियों ने अध्यापकों की भूमिका अदा करते हुए जूनियर कक्षाओं को पढ़ाया। इससे पहले प्रातः कालीन सभा में भी छात्रों ने शिक्षकों की जिम्मेदारी को बखूबी निभाया।

अध्यापक दिवस के उपलक्ष्य में छात्रों ने अपने अध्यापकों को कार्ड, फूल व गिफ्टस उपहार के रूप में देकर हैप्पी टीचर्स डे कहा। इस अवसर पर स्कूल की प्रिंसीपल श्रीमती सुनीता मलिक ने शिक्षक दिवस की विशेषता का वर्णन करते हुए कहा कि राष्ट्र के समूह शिक्षकों को डा. सर्वपल्ली राधा कृष्णन के बताए मार्ग पर चलते हुए अध्यापन जैसे सेवा कार्य को अपनाना चाहिए। इस अवसर पर स्कूल के अध्यापकों व विद्यार्थियों को प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी का भाषण सुनाने के लिए स्कूल की ओर से विशेष प्रबन्ध किया गया था। मोदी के भाषण से छात्रों में नई ऊर्जा का प्रसार हुआ है। शान्ति पाठ के पश्चात् सब अपने-अपने घरों को चले गए।

-रेनू बहल

आर्य समाज पार्कलेन के विशेष कार्यक्रम

आर्य समाज दाल बाजार एवं आर्य समाज पार्कलेन लुधियाना द्वारा सम्मिलित रूप से स्व. श्री खुशबख्त राय जी सूद की पुण्य स्मृति के उपलक्ष्य में 24.8.2014 सायं 4.30 से 6.30 बजे तक आर्य समाज दाल बाजार में एक विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया गया जिसमें सूद परिवार के सदस्यों ने बड़ी श्रद्धा से यज्ञ किया जिसे आर्य समाज के पुरोहित श्री कर्मवीर शास्त्री ने सम्पन्न कराया। यज्ञ के उपरान्त का कार्यक्रम आर्य समाज के सत्संग भवन में हुआ जिसका संचालन श्री विजय सरीन जी ने किया। श्रीमती सविता सूद, रिचा, अनु गुप्ता, पंडित रमेश कुमार व पंडित कर्मवीर शास्त्री ने मधुर भजन प्रस्तुत किए। पंडित बालकृष्ण जी शास्त्री, श्री श्रवण बत्तरा एवं श्री विजय सरीन ने श्री खुशबख्त राय जी के बारे में अपने उद्‌गार प्रस्तुत किए। स्व. श्री खुशबख्त राय जी सूद एक कर्मठ, लग्नशील कार्यकर्त्ता व आर्य नेता थे। वह आर्य समाज के प्रति अपनी सेवा में लुधियाना में बहुत प्रसिद्ध थे। अपने साथियों के प्रति स्नेह एवं भ्रातृ भाव रखने के कारण वे बहुत लोकप्रिय थे। उन्होंने जीवनपर्यन्त आर्य समाज की सेवा की व अपने बच्चों को उत्तम संस्कार दिए जिनके कारण सूद परिवार के सभी सदस्य विशेषकर दोनों सुपुत्र श्री अरूण सूद व श्री अजय सूद अपने पिता जी के द्वारा बताए मार्ग पर चलकर आर्य समाज की सेवा में कार्यरत हैं एवं पूर्ण रूप से समर्पित हैं। इस कार्यक्रम के लिए सूद परिवार ने सभी प्रकार का सहयोग प्रदान किया। आर्य समाज दाल बाजार के प्रधान श्री आत्म प्रकाश जी ने सबका धन्यवाद किया। इस कार्यक्रम में आर्य समाज के महामन्त्री श्री महेन्द्र पाल विग, वरिष्ठ उपप्रधान श्री देवपाल जी साथी एवं आर्य समाज के अन्य सदस्य उपस्थित थे।

आर्य समाज पार्कलेन के 7 सितम्बर 2014 के सायंकाल के सत्संग में स्व. श्रीमती बिमला भनोट की पुण्य स्मृति में भनोट परिवार द्वारा यज्ञ किया गया। श्रीमती बिमला भनोट को याद करते हुए श्री श्रवण बत्तरा व श्री विजय सरीन ने कहा कि स्व. श्रीमती बिमला भनोट आर्य सिद्धान्तों पर आरूढ़ रही और अपने परिवार के सदस्यों को आर्य विचारों की ओर मोड़ने में सफल रही जिसके कारण उनके परिवार के सभी सदस्य आर्य समाज के साथ सेवा व समर्पण भाव से जुड़ गए। श्रीमती बिमला भनोट सबके लिए स्नेह व आदर भाव रखती थी और आर्य समाज के क्षेत्र में उनका विशेष स्थान रहा।

thearyasamaj.org

वेदवाणी

प्रभु के रक्षण के निराले ढंग

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः।
नास्य क्षीयन्त ऊतयः॥

ऋ० ६।४५।३

विनय-मैं क्या बतलाऊँ प्रभु किन-किन अद्भुत ढंगों से मनुष्य को उन्नत कर रहे हैं। जब मनुष्य रोता और पीटता रहता है, जब उसके अन्दर ऐसे युद्ध चल रहे होते हैं कि उसे विफलता पर विफलता ही मिलती जाती है, पीछे से पता लगता है कि उस समय में, उन्हीं दिनों में उसने अपनी उन्नति का बड़ा रास्ता तय कर लिया होता है। मनुष्य प्रभु की कल्याणमयी घटनाओं को नहीं समझ पाता कि उन घटनाओं से कभी-सुदूर भविष्य में उसका कल्याण कैसे सधेगा ? प्रभु के उन्नत करने वाले मार्ग इतने महान् और विशाल हैं कि अल्पदृष्टि मनुष्य उन्हें पूर्णता में कभी नहीं देख सकता, अतएव वह कल्याण की ओर जाता हुआ भी घबराया रहता है। प्रत्येक मनुष्य अपनी-अपनी प्रकृति स्वभाव के अनुसार अपने-अपने निराले ढंग से उन्नत व विकसित हो रहा है। जब मनुष्य अपने ही उन्नति मार्ग को नहीं समझ पाता तो उसके लिए दूसरे मनुष्यों के विकास का दावा भरना कितना कठिन साहस है। उस अगम्य लीला वाले प्रभु की जिस 'प्रणीति' से जिस व्यक्ति से उन्नति पायी होती है। वह व्यक्ति उसी रूप में उस प्रभु के गीत गाता फिरता है। इस तरह अनादिकाल से मनुष्य नाना प्रकार से उसकी प्रशस्तियां गाते आ रहे हैं और गाते रहेंगे। मनुष्य उसकी स्तुतियों का कैसे पार पाएं ? भक्त पुरुष तो उस प्रभु की रक्षाओं का-रक्षा के प्रकारों का ही अन्त नहीं देखता। प्रभु की रक्षण-शक्ति कभी क्षीण नहीं होती। वहां से रक्षणों का एक ऐसा सनातन प्रवाह बह रहा है कि वह सब मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट-पतंगों की, सब स्थावर और अस्थावर जगत् की, एक ही समय में अकल्पनीय प्रकारों से रक्षा कर रहा है। मनुष्य अपने पिछले कुछ अनुभवों के आधार पर सोचता है कि ऐसा होने से मेरी रक्षा हो जाएगी, अतः वह वैसा ही होने की प्रभु से प्रार्थना करता है और वैसी ही आशा करता है, परन्तु इस बार प्रभु एक बिल्कुल नये मार्ग से रक्षा करके मनुष्य को आश्चर्यचकित कर देते हैं एवं नये-से-नये अकल्पनीय ढंगों से मनुष्य को प्रभु का रक्षण मिलता जाता है, तब पता लगता है कि प्रभु संसार का सब प्रकार से कल्याण ही कर रहे हैं। हम मानें या न मानें, पर वे तो हमें मारते हुए भी हमारी रक्षा कर रहे हैं। अहो, देखो उस प्रभु का उन्नति-मार्ग महान् हैं, उसकी रक्षा के प्रकार अनन्त हैं, जानने वाला सब संसार उसकी स्तुतियां-ही-स्तुतियां गाता है।

साभार-वैदिक विनय, प्रस्तुति-रणजीत आर्य

आर्य समाज जालन्धर छावनी का वेद सप्ताह

आर्य समाज जालन्धर छावनी का वेद सप्ताह 22 सितम्बर से 28 सितम्बर 2014 तक बड़ी धूमधाम से मनाया जा रहा है। इस अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महोपदेशक श्री विजय शास्त्री जी के प्रवचन और श्री अरुण कुमार जी वेदालंकार के मधुर भजन होंगे। सभी धर्म प्रेमी सज्जनों से निवेदन है कि वह इस अवसर पर पहुंच कर धर्म लाभ उठावें।

गुरुकुल का आयुर्वेद महान
घर-घर में मिले रोगों से निदान

गुरुकुल च्यवनप्राश
सभी के लिए स्वादिष्ट, रुचिकर, पौष्टिक रसायन।

गुरुकुल पायोकिल
पायोरिया की आयुर्वेदिक औषधि
दांतों में खून रोके, मुंह की दुर्गन्ध दूर करे, मसूड़ों के रोग, ढीले दांत ठीक करे।

गुरुकुल शतशिलाजीत सूर्यतापी
पुष्टीदायक, बलवर्धक
शरीर में नया खून और उत्साह का अनुभव

गुरुकुल ब्राह्मी रसायन
बुद्धिवर्धक, स्फूर्तिदायक, दिमागी कमजोरी दूर करे।

गुरुकुल मधुमेह नाशिनी गुटिका
मधुमेह एवं प्रत्येक प्रकार के प्रमेह में लाभदायक

गुरुकुल मधु
गुणवत्ता एवं ताज़गी के लिए

गुरुकुल चाय
खाँसी, जुकाम, इन्फ्लूएंजा व थकान में अत्यंत उपयोगी।

अन्य प्रमुख उत्पाद
गुरुकुल द्राक्षारिष्ठ
गुरुकुल रक्तशोधक
गुरुकुल अश्वगंधारिष्ट

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार डाकघर : गुरुकुल कांगड़ी-249404, ज़िला-हरिद्वार (उत्तरांचल) फोन : 0134-416073

शाखा कार्यालय : 63, गली राजा केदार नाथ, चावड़ी बाजार, दिल्ली-6, फोन : 23261871

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा आर. के. प्रिंटर्स प्रैस, टाण्डा फाटक जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। E-mail: apspunjab2010@gmail.com
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।